International Journal of Leading Research Publication (IJLRP)
E-ISSN: 2582-8010 ● Website: www.ijlrp.com ● Email: editor@ijlrp.com

चार्वाक दर्शन और मोक्ष

मनोज कुमारी[1], डॉ. सुमित कुमार शर्मा[2]

[1]प्रस्तोत्री- शोधार्थी, संस्कृत विभाग, सिंघानिया विश्वविद्यालय, बड़ी पचेरी

[2] निर्देशक-सहायक प्रोफेसर, सिंघानिया विश्वविद्यालय, बड़ी पचेरी

परिचय

आज के अर्थ प्रधान युग में भौतिक सुखों की चाह को लेकर जन मानस् में इस प्रकार आपाधापी मची हुई है कि उसके आगे जीवन की अन्य बातें गौण हो चली हैं। आदमी को यह होश नहीं है कि वह क्या है और कहाँ जा रहा हे? ज्यो-ज्यों वह उन्नति की ओर अग्रसर हो रहा है, जीवन की सुख-शान्ति छिनती चली जा रही है। चारों और असन्तोष और अशान्ति का वातावरण है। पुरूषार्थचतुष्टय में से केवल अर्थ और काम का वर्चस्व ही जीवन के स्वरूप को तिरोहित कर रहा है। अपवादों को छोड़कर मनुष्य धनवान बनने की फिक्र में मदहोश है। वह अहर्निश कामलिप्सा व भोगवाद का आनन्द लेने में ही प्रयत्नशील है। उसे नैतिक-अनैतिक, शुचिता और अशुचिता, अच्छा-बुरा, धर्म-अधर्म जैसे विचारों का फर्क समझ नहीं आ रहा हे। वह निरन्तर भोगवाद की ओर अग्रसर हो रहा है।

चार्वाक दर्शन

आधुनिक युग का नामकरण एक उपभोक्तावादी युग के रूप में स्थापित हो चुका है। विश्व में एक नई संस्कृति का बड़ी तेजी से विकास हो रहा है जिसका नाम पाश्चात्य संस्कृति है। इस उपभोक्तावादी संस्कृति ने जो अकल्पनीय भौतिक सुख-साधन उपलब्ध करवाय हैं, इनको प्राप्त करने के लिए मनुज निकृष्ट से निकृष्ट कार्य करने में भी रंचमात्र संकोच नहीं करता। वह अहर्निश निन्यानवे के फेर में पड़ा रहता है। इस निन्यानवे के फेर ने उसके सामाजिक व पारिवारिक जीवन पर विराम चिन्ह लगा दिया है। वह केवल और केवल भोगवादी बनकर रह गया है। सामाजिक मर्यादाऐं उससे कहीं पीछे छूट गई हैं।

आधुनिक चिन्तन प्रवाह में भौतिकवाद की जो यह नवीन धारा प्रवाहित हो रही है इसे दर्शनशास्त्र के दार्शनिक लोकायत के नाम से जानते हैं। लोक में विख्यात या लोकप्रिय अथवा लोक रंजक होने के कारण ही इसे लोकायत कहा जाता है। इस विषय में आचार्य शंकर का मत है कि देह से भिन्न आत्मा की सता नहीं मानने वाले ही लोकायत है- लोकायतिकानामपि चेतन एव देहे इति। हरिभद्रसूरि ने षड्दर्शनसमुच्य में चार्वाक को लोकायत कहा है- लोकायत वदन्त्येनम्। चार्वाक वृहस्पति के शिष्य थे। इन्होंने इस दर्शन का लोकों में काफी प्रचार प्रसार किया। इसलिए यह चार्वाक दर्शन कहलाने लगा। चार्वाक दर्शन का प्राचीनतम नाम लोकायत ही है। यही लोकात्मा का क्रीड़ास्थल है। देह इनकी आत्मा है और मरण मुक्ति।

कुछ दार्शनिकों का मानना है कि चार्वाक शब्द की उत्पति चर्व धातु से हुई है जिसका अर्थ है- चबाना अथवा खाना। अतः इसे खाओ पिओ और मोज करो ;म्जए कतपदा दक बंद इम उंततलद्ध की संज्ञा से जाना जाने लगा। खाने-पीने पर अधिक जोर देने के कारण इस दर्शन को चार्वाक दर्शन के नाम से जाना जाने लगा। कुछ दार्शनिक इसे दो शब्दों के योग से बना शब्द मानते हैं- चारू ओर वाक्। चारू का अर्थ है मीठा और वाक् का अर्थ है वचन अर्थात चार्वाक का अर्थ हुआ मीठे वचन बोलने वाला।

'सुन्दरा वाणी यस्य तद् दर्शन चार्वाक इति कथ्यते।'

चावार्क का भोग का सिद्धान्त जन साधारण को मनोहर लगता है। संस्कृत के कोष में चारू को वृहस्पति का प्रयाय माना गया है। अतः 'चार्वाक' शब्द का अर्थ बृहस्पति का वचन सिद्ध होता है। तारानाथ तर्क वाचस्पति के मत में चारू शब्द का अर्थ सुन्दरा या मनोरम होता है तथा बहुब्रीहि समास करने पर इसका अर्थ सुन्दर, मनोरम वचनयुक्त उपदेश है। अतः चार्वाक शब्द का प्रयोग वह व्यक्ति विशेष या सम्प्रदाय विशेष के लिए करते हैं।

'चारूः लोकसम्मतः वाकः वाक्यम् यस्य सः।'

ट्रिवटनी ने 'चार्वाक' शब्द का अर्थ मधुरभाषी किया है। सर्वदर्शन संग्रह के रचियता माधवाचार्य जी ने चार्वाक की जो परिभाषा दी है वह अद्वितीय है-

यावज्जीव सुखं जीवेद्दणं कृत्वा घृतं पिवेत्।

भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ?

अर्थात- जब तक जीओ सुखपूर्वक जीओ, ऋण लेकर भी घी पीओ, मौत के बाद तो यह देह जलकर राख हो जायेगी; फिर ऋण चुकाने की या लोटकर आने की चिन्ता कैसी? चार्वाक केवल अर्थ और काम को ही परमपुरूषार्थ मानते हैं। धर्म और मोक्ष की सता से विमुखता चार्वाको को ईश्वर से दूर करती है। चार्वाकों का कहना है कि ईश्वर की सता वास्तव में ही नहीं है। ईश्वर, आत्मा मोक्ष यह सभी वेदों में लिखे गए अप्रमाणिक शब्द हैं। चार्वाक वेदों को ही धूर्त भाण्ड और निशाचरों की रचना मानते हैं।

'देहच्छेदो मोक्षः' में विश्वास करने वाले चार्वाकों का मानना है कि समान्यतः मोक्ष उस दशा का नाम है जहाँ मानव जीवन के दुःखों से छुटकारा पाया जाता है तथा मानव इच्छाओं से रहित हो जाता है। अतः मृत्यु ही मोक्ष है।

चार्वाक दर्शन की ज्ञान मीमांसा

चिन्तशील ज्ञान के द्वारा यथार्थ के द्वार तक पहुँचते हैं और चार्वाक की सम्पूर्ण ज्ञान मीमांसा उसके प्रमाण विज्ञान पर आधारित है। विभिन्न दर्शनों में प्रमाणों की संख्या और उसके स्वरूप आदि के विषय में प्रारम्भ से भेद माना जाता रहा है। भारतीय दर्शन में अधिक से अधिक आठ प्रमाणों को स्वीकार किया गया है- प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द या आगम, उपमान, अर्थपता और अभाव। इनके अतिरिक्त पौराणिकों द्वारा दो अन्य प्रमाण मान्य हैं - एतिह्य और सम्भव। वैशेषिक तथा बौद्ध दर्शन प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाण को स्वीकार करते हैं। जैन, सांख्य तथा योग तीन प्रमाणों को स्वीकार करते हैं- प्रत्यक्ष, अनुमान तथा शब्द। न्याय दर्शन इन तीनों के अतिरिक्त उपमान को भी स्वीकार करता है। मीमांसा दर्शन में प्रभाकर सम्प्रदाय न्याय के इन चार प्रमाणों के अतिरिक्त अर्थापता को भी स्वीकार करता है अर्थात् पाँच प्रमाणों को स्वीकार करता है। मीमांसा में भाट्टसम्प्रदाय तथा वेदान्त इन पाँच प्रमाणों के अतिरिक्त अभाव अथवा अनुपलब्धि छठा प्रमाण भी स्वीकार करता है। पौराणिक विद्वान इन सभी प्रमाणों के अतिरिक्त एतिह्य और सम्भव इन दो प्रमाणों को भी स्वीकार करते हैं।

चार्वाक केवल प्रत्यक्ष प्रमाण को स्वीकार करते हैं दार्शनिक क्षेत्र में जड़वादी चार्वाक दार्शनिकों ने समस्त मानवीय प्रतीतियों का मूल्यांकन केवल प्रत्यक्ष द्वारा सम्पादित करने का प्रयास किया गया है। उनका मौलिक सिद्धान्त

है कि जो पदार्थ प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा उपलब्ध होता है, उसकी सता है तथा जिसकी प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा उपलब्धि नहीं होती, उसके अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया जा सकता।

प्रत्यक्ष प्रमाण का स्वरूप:

जब हम किसी विषय का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं तो प्रथम प्रश्न यही उठता है कि हम उस विषय का ज्ञान कैसे प्राप्त करें एवं ज्ञान के उन साधनों में क्या दोष हो सकते हैं। जैसा कि सभी जानते हैं कि हमारा ज्ञान यथार्थ तथा अयथार्थ दोनों प्रकार का हो सकता है। जो वस्तु जैसी हो उसे उसी रूप में जानना अयथार्थ ज्ञान है। यथार्थ ज्ञान को प्रमा तथा अयथार्थ ज्ञान को अप्रमा कहा जाता है। नैयायिकों के अनुसार जो ज्ञान इन्द्रियों और अर्थ के सन्निकर्ष से उत्पन्न हो, जिस शब्द का प्रयोग न हो तथा जो भ्रमरहित एवं निश्चयात्मक है वही प्रत्यक्ष है। माधवाचार्यकृत सर्वदर्शनसंग्रह के अनुसार चार्वाकों को केवल प्रत्यक्ष प्रमाणवादी बतलाया है। चार्वाकों के अनुसार असंदिग्ध, निश्चित एवं यथार्थ ज्ञान केवल प्रत्यक्ष प्रमाण से ही हो सकता है। अन्य किसी साधन से नहीं। प्रत्यक्ष से तात्पर्य है श्रोत्र, स्पश, नेत्र, जिह्वा एवं घ्राण इन पाँच ज्ञानन्द्रियों से प्राप्त होने वाला ज्ञान। श्रोत्र इन्द्रिय द्वारा ध्वनि ग्रहण की जाती है, स्पर्श इन्द्रिय द्वारा शीत-उष्ण आदि का ज्ञान होता है, नेत्र इन्द्रिय रूप या आकार को ग्रहण करती है, जिह्वा से मृदु, तिक्त, क्षार आदि स्वाद ग्रहण किया जाता है, घ्राण इन्द्रिय के द्वारा गन्ध ग्रहण करते हैं। इस प्रकार जो ज्ञान इन पाँच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ग्रहण किया जाता है वह प्रत्यक्ष ज्ञान कहलाता है। उपर्युक्त पाँच प्रकार की संवेदना भौतिक वस्तुएं उत्पन्न करती है। फलतः इन्द्रिय ज्ञान अथवा प्रत्यक्ष ज्ञान केवल भौतिक वस्तुओं तक ही सीमित है। लोकायत असीम ज्ञान को स्वीकार नहीं करते। जो वस्तु प्रत्यक्ष की सीमा से परे होती है उसका ज्ञान नहीं होता।

माधवाचार्यकृत सर्वदर्शन संग्रह के 'चार्वाकदर्शनम्' अध्याय के अनुसार अनुमान प्रमाण का खण्डन इस प्रकार है -

अनुमान का खण्डन:

पर्वत के शिखर से निरन्तर निकलने वाली धूमरेखा को देखकर वह्नि का अनुमान किया जाता है। अनुमान के तीन पद होते हैं -

1. हेतु
2. साध्य
3. पक्ष

हेतु -हेतु वह है जिसके माध्यम से साध्य को सिद्ध करने का प्रयास किया जाता है। प्रस्तुत उदाहरण में धूम हेतु है जिसको देखकर वह्नि को सिद्ध करने का प्रयास किया गया है।

साध्य -साध्य वह हे ''जिसको हेतु की उपस्थिति है' ' के आधार पर सिद्ध किया जाता है। इस उदाहरण में अग्नि साध्य हे जिसकी धूम की उपस्थिति में सिद्धि करते हैं।

पक्ष -पक्ष में उस स्थान, वस्तु अथवा व्यक्ति का बोध होता है, जिसमें साध्य की उपस्थिति सिद्ध की जाती है। यहाँ पर्वत पक्ष है जहाँ पर अग्नि की उपस्थिति सिद्ध की जाती है।

अनुमान का मुख्य आधार व्याप्ति है हेतु का साध्य के साथ अटूट अविच्छिन्न सम्बन्ध व्यप्ति कहलाता है। यथा जहाँ-जहाँ धूम है वहाँ अग्नि है। इस व्याप्ति में धूम व अग्नि के अपवाद रहित अविच्छिन्न सम्बन्ध को स्वीकार किया जाता है अर्थात जहाँ धूम है वहां अग्नि भी अनिवार्य रूप से उपस्थित है। यही व्याप्ति है। इसी व्याप्ति के आधार पर चार्वाक दार्शनिक अनुमान का खण्डन करता है। प्रत्येक अवस्था में अनुमान की सफलता व्याप्ति पर आधारित है। व्याप्ति के ज्ञान में दो उपाधियाँ होती हैं - निश्चित, शंकित। व्याप्ति में उपाधि रहने पर निगमन भी सोपाधिक अर्थात् अशुद्ध होगा। निम्नलिखित अनुमान सोपाधिक है जैसे -

- सभी हिंसाएँ अधर्म का साधन हैं।
- यह हिंसा भी हिंसा ही है।
- यह हिंसा अधर्म का साधन है।

यहाँ पर व्याप्ति वाक्य में 'निषिद्ध' उपाधि है अर्थात् व्याप्ति को इस प्रकार होना चाहिए - 'सभी निषिद्ध हिंसाएँ अधर्म का साधन हैं' यदि ऐसा नहीं कहा जाए तो वेदविहित हिंसा भी अधर्म का साधन हो जाएगी। इसी उपाधि के चलते निगमन भी सोपाधिक हो गया कि 'यदि यह निषिद्ध हिंसा है तो अधर्म का साधन है। व्याप्ति की सता मात्र से ही अनुमान लाभान्वित नहीं होता, जब तक कि उसका निश्चित ज्ञान न हो। इसी प्रकार व्याप्ति यदि उपाधि में निश्चित हो तब तो अनुमान हो नहीं सकता। उपाधि के शंकित होने पर भी कहीं व्याप्ति होगी, कहीं नहीं। शंकित उपाधि का उदाहरण है - जहाँ जहाँ मैत्रीतनयत्व है वहाँ वहाँ श्यामतत्व है। यहाँ अनुमान सोपाधिक है। यहाँ पर 'शाकपाकजन्यत्व' शंकित उपाधि है। आशय यह है कि किसी ने मैत्री नामक महिला के 7 पुत्र देखे थे वे सभी श्यामवर्ण के थे जब उसने सुना कि मैत्री के अष्टम पुत्र का जन्म हुआ है तो उसने बिना देखे ही कह दिया 'यह पुत्र श्याम है मैत्री का पुत्र होने से' किन्तु उसका यह कथन ठीक नहीं था क्योंकि यह पुत्र गोरे रंग का था। यहाँ मैत्री के पुत्रों की श्यामता का निमित तो यह था कि मैत्री ने सभी पुत्रों के गर्भकाल में शाक आदि अधिक खाए थे, उनसे ही वे श्यामवर्ण के हो गए। मैत्री का पुत्र होना उनकी श्यामता का निमित नहीं है अतः मैत्रीतनयत्व और श्यामत्व के सम्बन्ध में शाकपाकजन्यत्व उपाधि का ग्रहण हो रहा है। इसलिए व्याप्ति को दोनों उपाधियों से रहित होना चाहिए। चार्वाक सिद्ध करते हैं कि व्याप्ति को प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द आदि किसी भी प्रमाण से नहीं जान सकते।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शास्त्री, श्रीनिवास, वाचसपति मिश्र द्वारा बौद्ध दर्शन का विवेचन, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, 1968
2. शेरवात्सकी टी., दी कन्सेप्शन आफ बुद्धिस्ट निर्वाण, भारतीय विद्या भवन प्रकाशन, वाराणसी
3. शेरवात्सकी टी., सेन्ट्रल कन्सेप्शन आफ बुद्धिज्म एण्ड दी मीनिंग आफ वर्ड धम्म, आर.ए. सोसायटी, लन्दन, 1923
4. सांस्कृत्यायन राहुल, मज्झिमनिकाय, महाबोधि सभा, सारनाथ, 1953